शुष्क मरुप्रदेश के प्रमुख वृक्ष

उष्ट्र पालन में उपयोगिता व महत्व

(नेटवर्क प्रोजेक्ट)

प्रधान अन्वेषक : डॉ. एम.एस. साहनी

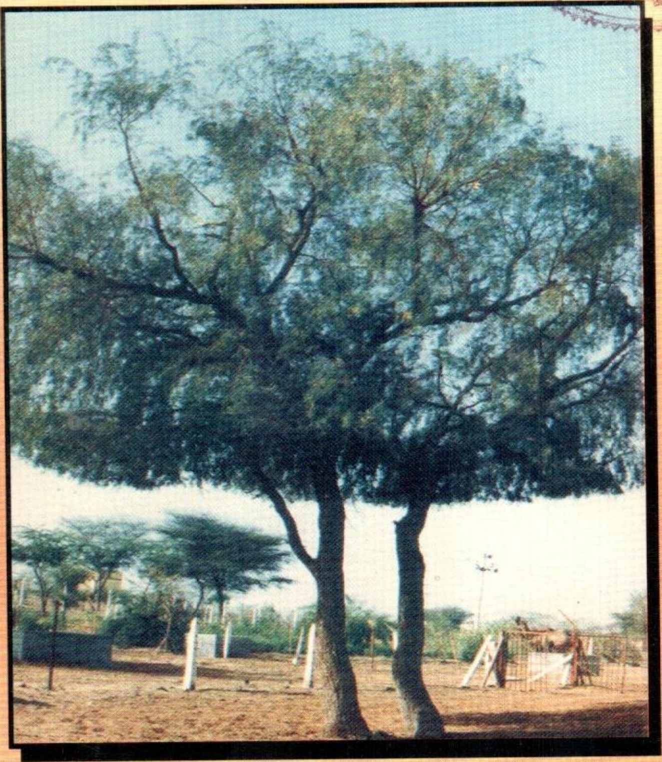

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र

(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद)

जोरबीड़, बीकानेर-334 001(राज.)

शुष्क मरूप्रदेश के

प्रमुख वृक्ष

उष्ट्र पालन में उपयोगिता एवं महत्व

(नेटवर्क प्रोजेक्ट)

आलेख :
डा. एम.एस.साहनी
बलदेव दास किराडू
राजा पुरोहित
राम कुमार
निर्मला सैनी
नेमीचन्द

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र
(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद)
जोरबीड़, बीकानेर - 334 001 (राज०)

क्रमांक

1. खेजड़ी 1
2. जाल 4
3. नीम 6
4. इजरायली बबूल 8
5. अरडू.. 9
6. विलायती बबूल.. 11

प्राचीन समय से प्रकृति प्रदत् कुछ ऐसे वृक्ष होते हैं, जिनकी पत्तियां चारे के रूप में पशुओं हेतु उपयोग में ले सकतें हैं। इनमें प्रोटीन और अन्य आवश्यक पोषक तत्वों की उत्तम मात्र भी विद्यमान होती है। इन वृक्षों को हम चारा वृक्ष के नाम से जानते हैं। प्रायः हरे चारे व सूखे चारे की भारी कमी के दौरान ये चारा वृक्ष, बहुत उपयोगी रहते हैं। शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में प्रमुख चारा वृक्ष–खेजड़ी, जाल, नीम, बबूल व अरडू इत्यादि होते हैं, जिनकी छंगाई अथवा कटाई के बाद की बढ़वार अलग–अलग प्रकार की होती है। विभिन्न प्रजाति के वृक्षों के चारा उत्पादन की क्षमता, वृक्ष की उम्र, छंगाई की मात्रा, समय–अन्तराल पर निर्भर करती है।

शुष्क मरुप्रदेश के प्रमुख वृक्ष
उष्ट्र पालन में उपयोगिता व महत्त्व

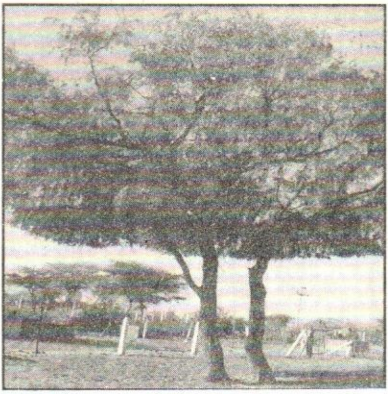

खेजड़ी {प्रोसोपिस सिनेरेरिया}:-

उष्ण मरुक्षेत्र का खेजड़ी एक मुख्य वृक्ष है तथा बहुगामी उपयोगिता {चारा, भोजन, सब्जी, लकड़ी का सामान , ईंधन व दवा} के कारण इस पेड़ का विशेष महत्व है। प्रदेश की जलवायु में जहां गर्मियों में अधिकतम तापमान 45° - 48° से. व सर्दियों में न्यूनतम 4° से. 10° सें. तथा जहां 150 मि. मी. से 450 मि. मी. वर्षा होती है वहां यह पेड़ सफलतापूर्वक पनपता है। यह धीमी गति से बढ़ने वाला वृक्ष है तथा पूर्ण बढ़ोतरी में लगभग 15-20 वर्ष का समय लगता है । इसकी औसत ऊंचाई 12-14 मीटर होती है तथा तने का औसत व्यास 75 सेन्टीमीटर तक होता है। खेजड़ी के पेड़ की जड़ मूसलाकार होती है जो भूमि में 30-40 मीटर की गहराई तक चली जाती है। खेजड़ी के पेड़ों की संख्या अलग–अलग क्षेत्रों की भूमि की उत्पादन क्षमता, ऊपरी सतह व धार्मिक–सामाजिक मान्यता पर निर्भर है। मुख्यतः यह राजस्थान, हरियाणा, पजांब, गुजरात व कर्नाटक के शुष्क व अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में पाई जाती है। पेड़ की टहनियों पर हरे रंग की छोटी–छोटी पत्तियां तथा छोटे–छोटे हुक के सदृश्य कांटे पाये जाते हैं। इसके वृक्षों पर मार्च व अप्रैल माह में हल्के हरे व पीले रंग के पुष्प आते हैं जिनमें मई–जून माह में फलियां लगती हैं। इन फलियों की लम्बाई 3-8 इंच होती है। खेजड़ी की आयु बहुत लम्बी होती है तथा इसके 400-500 वर्ष पुराने पेड़ भी उपलब्ध हैं। पुनरूद्भवन की अद्‌भुत क्षमता विद्यमान होने से यह पेड़ जमीन की सतह से काटने पर भी शीघ्र, पुनः पेड़ का रूप ले लेता है।

चारा उत्पादन व महत्व – सूखे पत्तों को प्रादेशिक भाषा में लूंग / लूम या पनड़ी एवं हरी फलियों को सांगरी कहते हैं, जिनका ऊँटों के अलावा अन्य पशु– बकरी, भेड़ व गाय भी चाव से उपयोग करते हैं। एक खेजड़ी के वृक्ष से औसतन 40-50 किलोग्राम हरा चारा व 25-30 किलोग्राम तक सूखा चारा प्राप्त हो जाता है, जो कि मुख्यतः स्थान, भूमिगत पानी की उपलब्धता व औसत वर्षा पर निर्भर करता है। बीड़/चारागाह व खेतों में जहां खेजड़ी के वृक्षों की संख्यां अधिक होती है, वहां ऊँटों को चरने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं आती, अपनी ऊंचाई के कारण ऊँट, पेड़ों की टहनियों को आराम से चरते हुये अपना निर्वाह कर लेता है, खेजड़ी की चराई सबसे अधिक बकरी उसके पश्चात क्रमशः ऊँट व भेड़ के द्धारा की जाती है। पत्तों की अधिक पौष्टिकता के कारण ग्रामीण दुधारू पशुओं में दूध की मात्र में बढ़ोतरी हेतु गायों व बकरियों को चारे और दाने के साथ इसकी पत्तियां खिलाते हैं। ग्रीष्म ऋतु में पत्तियां पानी में भिगोकर व सर्दियों में दाने के साथ उबालकर उपयोग में लाई जाती है। यह देखा गया है कि गांवों में किसान साल में दो बार मई–जून एवं नवम्बर–दिसम्बर माह में इसकी टहनियों की छंगाई करके पत्तियों को सुखाकर इकट्ठा करके रख लेते हैं तथा दुधारू पशुओं व अकाल/चारे के अभाव में इन्हें जानवरों को बाँटे के साथ काम में लाया जाता है। छंगाई के पश्चात् नई आने वाली कच्ची पत्तियों को किसान चराई के उपयोग में नहीं लेते चूंकि उस समय उनमें टेनिक अम्ल की मात्रा ज्यादा होती है। जिसके कारण पत्तियों का स्वाद कडुवा होता है।

ऊंटों में चराई की प्राथमिकता पर किये गये अनुसंधान से यह देखा गया है कि चारागाह क्षेत्र में जहां कई प्रकार के वृक्ष {बबूल, खेजड़ी, अरडू, नीम, बोरडी आदि} उपलब्ध हों तो ऊँट सर्वप्रथम खेजड़ी की टहनियों व पत्तों का उपयोग करता है अर्थात् चरने की प्राथमिकता खेजड़ी की रहती है । वर्ष की विभिन्न तिमाहियों में ऊँटों द्धारा चरने की सबसे अधिक 60-65 प्रतिशत प्राथमिकता गर्मी के महीनों {अप्रेल, मई व जून} में देखी गई है।

तिमाही बार में खेजड़ी की चराई की प्राथमिकता

तिमाही	जनवरी–मार्च	अप्रेल–जून	जुलाई–सितम्बर	अक्टूबर–दिसम्बर
चराई(%)	10-15	60-65	5-10	5-10

खेजड़ी की पत्तियों का रसायनिक सघंटन (प्रतिशत) :-

शुष्क प्रदार्थ –	35 - 38
अशुद्ध प्रोटीन –	11.0 - 13.0
अशुद्ध रेशेदार पदार्थ –	19.0 - 20.0
कुल राख –	16.0 - 20.0
फासफोरस –	1.5 - 2.2

उपयोगिता :– बहुगामी उपयोगिता के कारण खेजड़ी के वृक्ष को इस क्षेत्र का 'कल्पवृक्ष' भी कहा जाता है तथा पेड़ के प्रत्येक भाग का अपना महत्व है। खेजड़ी की लकड़ी मुख्यतौर पर गांवों में ईधन के रूप में काम में लायी जाती है। कृषि के छोटे–मोटे औजारों ,देवताओं की प्रतिमाएं, खिड़कियों–दरवाजों के बनाने में, झोपड़ियों की छत बनाने इत्यादि कार्यो में इसकी लकड़ी का उपयोग किया जाता है। खेजड़ी की लकड़ी जलने में सुगम होने के साथ धुआं कम छोड़ती है, पेड़ की पतली सूखी टहनियों को खेतों व घरों में बाड़ बनाने तथा धार्मिक कार्यो जैसे– हवन इत्यादि में भी इसे प्रयुक्त करते हैं। इसका बार्क { छाल } स्वाद में मीठा होता है तथा छाल का पाउडर गर्मी में फूँसियों, दस्त, व अस्थमा रोग में उपयोग में लाया जाता है। जड़ों की छाल चमड़े की रंगाई हेतु भी काम लायी जाती है। खेजड़ी से { फरवरी/मार्च के महीनें में } गोंद भी प्राप्त होता है जो कि बहुत पौष्टिक होता है तथा औरतों के प्रसव काल में इसको लड्डु के रूप में काम लिया जाता है।

शुष्क/अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में हरी व कच्ची फलियों { सांगरी} का, सब्जी व अचार बनाने में बहुत उपयोग होता है। सांगरी को पानी में उबालकर और सुखाकर लम्बे समय तक रखकर सब्जी बनाने के काम में लाया जाता है। इसकी फलियों में 9.0 से 12.0 प्रतिशत अशुद्ध प्रोटीन व 8.0 से 12.0 प्रतिशत शक्कर होती है। ग्रामीण इलाकों के खेजड़ी की सूखी फलियों को जिसे स्थानीय भाषा में 'खोखे' भी कहा जाता है , पशु व बच्चे बड़े चाव से खाते हैं।

वर्तमान में ट्रेक्टरों व मशीनों के लगातार व अधिक उपयोग से नये पौधों की संख्या में कमी देखी गई है। अतः बरानी खेती में भूमि की उर्वरा शक्ति बनाये रखने हेतु व अधिक उत्पादन के लिए खेजड़ी के पेड़ों की उचित

देखभाल व संरक्षण की आवश्यकता है, जिससे पत्तियों के चारे के साथ–साथ फलियों का अधिक उत्पादन लिया जा सके तथा किसानों को अधिक आर्थिक सम्बल प्राप्त हो सके। खेजड़ी के पेड़ व पत्तियां जमीन की उर्वरा शक्ति के साथ–साथ फसलों की पैदावार बढ़ाने में भी सहायक होती है। यह मृदा की कार्बनिक पदार्थ की कुल नाइट्रोजन, फासफोरस, पोटेशियम, और सूक्ष्म तत्त्वों की मात्र 45 प्रतिशत तक बढा देती है। खेजड़ी के पेड़ भूमि को बांधने का कार्य भी करते है, तेज ग्रीष्म ऋतु में आंधियों से उड़ने वाली मिट्टी को रोकने का कार्य यह बखूबी करता है।

आयुर्वेदिक चिकित्सा क्षेत्र में भी खेजड़ी का उपयोग कई बीमारियों जैसे – अस्थमा, अतिसार, कुष्ठ, बवासीर, संर्पदंश, त्वचा रोग, पेशियों के ट्यूमर इत्यादि में किया जाता है।

विगत वर्षो में यह देखने में आया है कि रेगिस्तान के बारानी क्षेत्रें में जहां ट्रेक्टरों द्धारा खेतों में जुताई का कार्य लगातार किया जा रहा है ,वहां पायी जाने वाली स्थानीय झाड़ियों, घासों के साथ– साथ खेजड़ी के नये लगने वाले पौधों की संख्यां में 5-10 प्रतिशत की कमी आई है, जो कि पर्यावरण व खेती– दोनों ही दृष्टियों से हानिकारक है। अतः खेती व पशुधन के हित में क्षेत्र की इस प्राकृतिक सम्पदा को बचाने के लिए जागरूकता की आवश्यकता है।

वृक्षारोपण:– खेजड़ी के पौधों का वृक्षारोपण जुलाई–अगस्त माह (वर्षा ऋतु) में किया जाता है।

जाल (सेलवेडोरा):-

देश के उत्तरी पश्चिमी राज्यों – राजस्थान, गुजरात, हरियाणा आदि के उष्ण, शुष्क/अर्द्ध शुष्क भू–भाग में पाया जाने वाला वृक्ष है। विशेषतौर पर क्षारीय भूमि,बलुई/दुमट मिट्टी में जहां औसत वर्षा 150 मि.मी. से 350 मि.मी. तक होती है वहां बहुतायात में पाया जाता है। इसकी

दो प्रजातियां मुख्य रूप से पाई जाती हैः–

1 मीठा जाल (सेलवेडोरा ओलिआइडिस)

2 खारा जाल (सेलवेडोरा परसीका)

दोनों प्रजातियों में पत्तियों के आकार में अन्तर होता है, मीठे जाल की पत्तियों मोटी व चौड़ी होती है जबकि खारे जाल की पत्तियां पतली व लम्बी होती है। यह एक सदाबहार पेड़ है, जो कि झाड़ी व पेड़ दोनों रूप में पाया जाता है। इसके तने की बनावट टेढ़ी–मेढ़ी तथा शाखायें झुकी हुई रहती है। पत्तियां मोटी, सीधी और विपरीत दिशाओं में लगी हुई होती है। पेड़ों की औसत ऊँचांई 10-13 मीटर तक होती है तथा ऊपरी भाग का फैलाव करीब 8-10 मीटर तक होता है। इसकी औसत आयु 100-150 वर्ष तक होती है। जाल को पानी व नमी की बहुत कम आवश्यकता होती है।

वृक्षारोपणः- यह बीज तथा कलम दोनों ही विधियों से लगाया जा सकता है। जाल के वृक्ष का वृक्षारोपण का उचित समय वर्षा ऋतु के समय होता है, और यदि पानी उपयुक्त मात्रा में उपलब्ध हो तो मार्च के महीने में भी वृक्षारोपण किया जा सकता है।

चारे के रूप मेंः- जाल की पत्तियों को पशुओं के चारे के रूप में उपयोग में लाया जाता है, ग्रीष्म ऋतु – अप्रैल से जून तक शुष्क क्षेत्रों में जब घासों की उपलब्धता बहुत ही अल्प मात्रा में रह जाती है, तब ऊंटों के लिए यह पसंदीदा भोजन है। ऊँट इस पर लगे पत्ते बड़े चाव से खाते हैं, गांवों में किसान इसकी छँगाई करके भी ऊँटों को खिलाते हैं।

चारागाह क्षेत्र में, जहां खेजड़ी, जाल, नीम, अरडू इत्यादि के पेड़ उपलब्ध हों वहाँ ऊंटों के इसके चरने की प्राथमिकता द्वितीय देखी गई है। ऊंट की चराई के पश्चात् समूचा पेड़ एक छतरीनुमा लगने लगता है। ऊंट इसे बड़े आराम से चर लेते हैं। एक पेड़ से औसतन 50-70 किलोग्राम तक हरा चारा प्राप्त किया जा सकता है।

तिमाही बार में ऊँटों द्वारा जाल को चरने की प्राथमिकता

तिमाही	जनवरी–मार्च	अप्रेल–जून	जुलाई–सितम्बर	अक्टूबर–दिसम्बर
चराई(%)	10-15	30-33	30-40	10-12

जाल की पत्तियों का रसायनिक संघटन (प्रतिशत) :-

शुष्क पदार्थ –	30.0
वसा –	8.9
रेशा –	8.0
प्रोटीन –	15.10
कुल राख –	15.0 - 18.0

उपयोगिता :– जाल के पेड़ों में अप्रैल/मई माह में गोल अगूंर के आकार के छोटे गूदेदार फल लगते हैं। जो स्वाद में मीठे होते हैं व पकने पर यह लाल रंग के हो जाते हैं। इन्हें पीलू कहते हैं। एक पेड़ से औसतन 5-10 किलोग्राम पीलू प्राप्त हो जाता हैं। पीलू के सेवन से लू के प्रभाव से बचा जा सकता है। देहात में दमा(अस्थमा) आदि के रोग में इसका सेवन किया जाता है।

जाल के पेड़ से प्राप्त बीजों से उपलब्ध तेल, साबुन, मोमबत्ती, इत्यादि बनाने के काम में प्रयुक्त किया जाता है। हड्डियों के दर्द को कम करने में मलहम के रूप में इसका उपयोग किया जाता है।

नीम-(एजेडीरेक्टा इंडिका):–

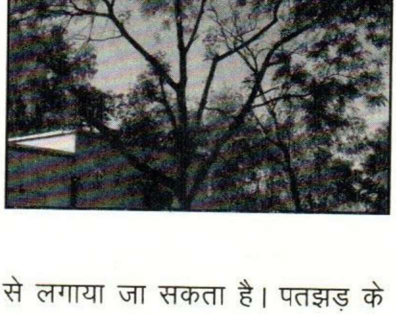

शुष्क/अर्द्धशुष्क क्षेत्रों का प्रमुख छायादार वृक्ष है, जो मुख्यतः राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, हरियाणा, पंजाब, उतरप्रदेश, आन्ध्रप्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा आदि राज्यों में पाया जाता है। नीम का पेड़ काफी फैलाव लिये होता है और इसकी औसत ऊंचाई 12-17 मीटर तक होती है एवं औसत आयु 100 वर्ष से भी अधिक होती है। यह पेड़ 250 मि.मी. से 1,125 मि. मी. तक वर्षा वाले क्षेत्रों में आसानी से लगाया जा सकता है। पतझड़ के मौसम (फरवरी/मार्च) में इस पेड़ के सारे पत्ते पीले पड़ जाते हैं, फिर नई

पत्तियां आने के बाद (अप्रैल/मई के माह में) हरे सफेद रंग के फूल लगते हैं, तत्पश्चात् फल (निम्बोली) लगने प्रारम्भ हो जाती है। निम्बोलियां प्रारम्भ में कच्ची व हरे रंग की होती है परन्तु जून/जुलाई माह में ये पकने पर पीले रंग की हो जाती है और स्वाद भी इनका मीठा होने लगता है।

वृक्षारोपण:– क्षारीय मृदा में इसे आसानी से उगाया जा सकता है। इसे बीज व पौधे के माध्यम से रोपण विधि द्वारा लगाया जा सकता है। यह देखा गया है कि कौओं द्वारा खायी गई निम्बोलियों में अंकुरण दर अधिक रहती है।

चारे के रुप में:- ऊँट और बकरी इसकी पतियों व कच्ची टहनियों को बड़े चाव से खाते हैं। परन्तु गायें इसे प्रायः कम पसन्द करती है। सामान्यतः इस वृक्ष की छंगाई नवम्बर/दिसम्बर में की जाती है। एक पेड़ से 50-70 किलोग्राम तक पत्तियों का चारा प्राप्त किया जा सकता है।

पत्तियों का रसायनिक संघटन (प्रतिशत) :-

शुष्क पदार्थ–	30.0
अशुद्ध प्रोटीन –	12.4 - 18.3
अशुद्ध रेशेदार तन्तु –	11.4 - 23.0
कुल राख –	7.7 - 18.5
कैल्शियम –	0.89 - 3.96
फॉसफोरस –	0.1 - 0.3

नीम के बीजों से खल भी बनाई जाती है। खल में हल्की दुर्गन्ध होने के कारण गाय व भैंस इसे खाना पसन्द नहीं करते हैं। परन्तु बकरी, एवं ऊँट इसे खा लेते हैं वहीं अन्य पशु इसे मिश्रण के रूप में खा लेते हैं। दूध की मात्रा व स्वाद के प्रभावित होने के कारण प्रायः इसे पशुओं को नहीं खिलाते हैं। इसके बीजों में नीमबिन, नीमविडीन, नीम्बीडोल तत्व इसके स्वाद को कड़ुवा बना देतें हैं। एक पेड़ से 8-10 किलोग्राम तक निम्बोली प्राप्त की जा सकती है।

बीजों से प्राप्त खल का रसायनिक संघटन (प्रतिशत) :-

शुष्क पदार्थ–	80.0 - 88.0
अशुद्ध प्रोटीन –	12.0 - 19.0
अशुद्ध रेशेदार तन्तु –	17.9 - 25.0
कुल राख –	8.8 -13.93
कैल्शियम –	0.42
फॉस्फोरस –	0.61

चराई के अध्ययन द्वारा देखा गया है कि जिन क्षेत्रों में खेजड़ी, जाल, कीकर, नीम इत्यादि के वृक्ष हों तो ऊँट द्वारा इसके चरने की प्राथमिकता अन्तिम रहती है। साधारणतः इसकी पत्तियों का स्वाद कड़ुवा होने से पशु इसे ज्यादा पसन्द नहीं करते हैं।

उपयोगिता :-

- हरी पत्तियों को किसान अनाज के भंडारण हेतु प्रयुक्त करते हैं जिससे अनाज को कीड़े इत्यादि लगने से बचाया जा सके।
- नीम की हरी पत्तियों को पानी में उबालकर नहाने से खुजली व दाद जैसी बीमारियों में आराम मिलता है।
- पतझड़ में नीम की गिरी हुई पत्तियों को जमीन में दबा देने से दीमक व कीड़ों का प्रभाव कम हो जाता है।
- वर्तमान में इसको मुर्गियों के दाने के रूप में प्रयुक्त करने के प्रयास किये जा रहे हैं।
- इसकी कच्ची टहनियों को दांतों के दाँतुन के रूप में काम में लिया जाता है।
- नीम का साबुन बनाने में प्रयोग होता है।
- सूखी छाल को पानी में घिसकर फोड़े–फुंसियों पर लगाने से शीघ्र ठीक हो जाते हैं।
- हल्की लकड़ी के फर्नीचर हेतु व अनुपयोगी लकड़ी को ईंधन में काम लाया जाता है।

इजरायली बबूल
(अकेशिया ट्रोटलिस) : –

शुष्क/अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में यह सड़कों के किनारे व अन्य स्थानों पर पाया जाने वाला एक प्रमुख पेड़ है जो शीघ्र (4 से 5 वर्ष में) तैयार हो जाता है। बबूल की जड़ें कम गहरी तथा ऊंचाई 5-10 मीटर तक होती है। इसके लिये हल्की क्षारीय, अच्छी जल निकास वाली

भूमि उपयुक्त होती है। वृक्ष की पत्तियां बहुत छोटी–छोटी और कम मात्र में तथा टहनियां कांटों – युक्त होती हैं।

वृक्षारोपण– अकेशिया टोटलिस के वृक्षारोपण का उचित समय जुलाई–अगस्त माह यानि वर्षा ऋतु में किया जाता है।

चारे के रुप में :–एक वृक्ष से करीब 15-20 किलोग्राम तक हरी पत्तियों का चारा प्राप्त होता है। ऊँट और बकरियाँ इसके पत्तों को बिना बाधा के बड़े आराम से चर लेते हैं। इस पेड़ पर (मार्च/अप्रैल) में हरे रंग की गोलाकार फलियां लगती है, जिन्हें ऊँट व बकरी बड़े चाव से खाते हैं।

ग्रीष्म ऋतु (अप्रैल से जून) तक इन पेड़ों पर पत्तियां बहुत कम रहती हैं और पेड़ सूखे–सूखे से लगते हैं। वर्षा ऋतु से ही हरी पत्तियां नजर आने लगती हैं।

इसकी पत्तियों का रसायनिक संघटन (प्रतिशत) :-

शुष्क पदार्थ–	25.0 - 30.0
अशुद्ध प्रोटीन–	12.0 - 14.0
अशुद्ध रशेदार तन्तु–	10.0 - 13.0
कुल राख–	10.0 - 12.0

उपयोगिता :– इजरायली बबूल की लकड़ी कृषि ईधन व हल्के कृषि –औजार बनाने के लिए उपयोग में लाई जाती है। रेगिस्तानी इलाकों में यह पेड़ भूमि के कटाव को रोकने में बहुत लाभप्रद है। इसकी टहनियों को खेतों की बाड़ आदि बनाने में प्रयुक्त करते हैं।

अरडू (ऐलेन्थस एक्सलसा):-

यह पेड़ गुजरात, राजस्थान, हरियाणा आदि राज्यों के अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में अधिक पाया जाता है। इसकी औसत ऊँचाई 10-15 मीटर तक होती है व इसका

तना दिखने में पित श्वेत मिश्र रंग का होता है। अरडू एक जल्दी बढ़ने वाला पेड़ है जो कि 5-7 वर्षों में बढ़कर तैयार हो जाता है। अरडू के पेड़ों में मार्च/अप्रैल माह में पीले रंग के फूल आते हैं तथा फल मई–जून माह में लगते हैं। इसका फल पकने पर लाल रंग का हो जाता है। इसकी पत्तियां आकार में बड़ी व चौड़ी होती है।

पत्तियों का रसायनिक संघटन (प्रतिशत) :-

शुष्क पदार्थ–	70.0
अशुद्ध प्रोटिन–	16.0 - 19.0
अशुद्ध रेशेदार तन्तु –	12.0 - 21.0
कुल राख –	11.0 - 19.0

वृक्षारोपण:– इस पेड़ को लगाने के लिये बलुई मिट्टी उपयुक्त होती है। इसे बीज व कलम दोनों विधियों से लगाया जा सकता है। इसके वृक्षारोपण का उचित समय वर्षा ऋतु में होता है, और पानी की अधिक उपलब्धता होने पर इसका फरवरी–मार्च के माह में भी वृक्षारोपण किया जा सकता है।

चारे के रूप में :– अरडू की पत्तियां लम्बी और चौड़ी एवं हरे रंग की होती है। बकरी व ऊँट इसकी सूखी व हरी दोनों प्रकार की पत्तियों को खाते है। ग्रामीणवासी अपने खेतों में अरडू के पेड़ों की छंगाई करके इसकी पत्तियों को बकरियों, ऊँटों , भेड़ों व अन्य पशुओं को खिलाते हैं, इसकी पतियां खाने में स्वादिष्ट व पौष्टिक होती है। अरडू के एक पेड़ से एक वर्ष में औसतन 3-5 क्विंटल हरा चारा प्राप्त किया जा सकता है। गर्मी के मौसम एवं सूखे अकाल की स्थिति में इसकी पत्तियों को झाड़कर सुखा लिया जाता है और इनको अन्य चारों के साथ मिलाकर पशुओं के आहार के रूप में काम लिया जाता है। इसकी पत्तियों में प्रोटीन की अधिक मात्रा पाई जाती है। इसकी सूखी पत्तियों को सीरे के साथ मिलाकर उसे खाने युक्त बनाया जाता है। अरडू के पड़ों की छंगाई साल में दो बार (मई–जून एवं दिसम्बर में) की जाती है। अरडू के पेड़ों की छंगाई तभी की जाये, जब पेड़ 4-5 वर्ष का हो। छंगाई इस प्रकार से करनी चाहिये जिससे पेड़ शंकुनुमा आकृति में रहे।

चराई सम्बन्धी अनुसंधान में यह देखा गया है कि खेतों में जहां खेजड़ी,बबूल, नीम, बोरड़ी, अरडू इत्यादि के पेड़ उपलब्ध हों तो ऊंट के द्वारा चरने की इसकी तृतीय/चतुर्थ प्राथमिकता रहती है।

तिमाही बार ऊँटों द्वारा अरडू पेड़ की उपलब्धता के आधार पर चरने की प्राथमिकता

तिमाही	जनवरी–मार्च	अप्रेल–जून	जुलाई–सितम्बर	अक्टूबर–दिसम्बर
चराई(%)	10-12	25-30	8-10	8-10

उपयोगिता :- अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में चारे की उपयोगिता के साथ–साथ अरडू की लकड़ी भी आय का अतिरिक्त साधन है। इसकी लकड़ी हल्की व मुलायम किस्म की होती है जो कि हल्के खिलौने, प्लाई व लकड़ी के समान इत्यादि बनाने हेतु काम में ली जाती है। अनुपयोगी लकड़ी जलाने के भी काम में ली जाती है।

विलायती बबूल (प्रोसोपिस जुलीफलोरा):-

यह पेड़ आस्ट्रेलिया से पुरानी दुनिया के रेगिस्तान में लाया गया। यह शुष्क व पहाड़ी दोनों क्षेत्रों में बहुतायत पाया जाता है तथा वर्ष भर हरा रहता है। सामान्यतः यह कीकर के नाम से जाना जाता है। पेड़ की पत्तियां आकार में छोटी एवं खेजड़ी की पत्तियों से मिलती– जुलती व साथ ही कांटों युक्त टहनियां होती है। वृक्ष की औसत ऊँचाई 8-10 मीटर तक होती है। इसकी जड़ें भूमि में बहुत गहराई तक जाती है तथा यह पेड़ व झाड़ी दोनों रूपों में पाया जाता है।

चारे के रूप में :–टैनिक अम्ल की अधिक मात्रा के कारण पत्तियों का स्वाद कड़वा होने से आमतौर पर पशु पत्तियों को नहीं खाते हैं। परन्तु सूखे व अकाल की स्थिति में पशु– ऊँट एवं बकरी इसकी नई पत्तियां थोड़ी मात्रा में खा लेते हैं। मई/जून में इसके ऊपर हरे रंग की फलियां लगती है जो पकने व सूखने पर हल्के पीले रंग की तथा स्वाद में मीठी हो जाती है। इन फलियों को ऊँट व बकरियां बड़े चाव से खाते हैं। पकी हुई सूखी फलियों को बकरियों को देने से दूध की मात्रा में बढ़ोतरी होती है।

	फलियों का रसायनिक संघटन (%)	पत्तियों का रसायनिक संघटन (%)
शुष्क पदार्थ–	90.70	25.0 - 30.0
अशुद्ध प्रोटिन–	11.90	9.5 - 10.0
अशुद्ध रेशेदार तन्तु–	25.30	10.0 - 12.0
कुल राख–	7.60	2.0 - 15.0

उपयोगिता :- ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में इसकी लकड़ी को ईंधन के लिए बहुतायत में काम लिया जाता है। मुख्य तने की लकड़ी के दरवाजे, खिड़कियां व फर्नीचर भी बनाये जाते हैं। ग्रामीण वासी इसकी छंगाई करके पतली टहनियों व लकड़ियों को खेतों में बाड़ बनाने के लिये काम में लेते हैं। शुष्क क्षेत्रों में यह छायादार वृक्ष के रूप में उपयोग में आता है। इससे प्राप्त गोंद उपयोग में लाया जाता है। वायु प्रदूषण एवं मृदा संरक्षण में मुख्य भूमिका निभाने के साथ–साथ पहाड़ी क्षेत्रों में मधुमक्खी पालन व्यवसाय में भी प्रमुख स्थानं रखता है। हर वर्ष इसकी छंगाई के पश्चात् नई आने वाली डालियाँ जो 1 से 2 इंच मोटी होती है कच्चे मकान, छपरों व अन्य उपयोग में लाई जाती है।

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

❖ प्रकाशक :

डॉ. एम.एस.साहनी

निदेशक

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र

जोरबीड़ बीकानेर-334 001 (राज.)

❖ प्रकाशन :

मार्च-2003

❖ मुद्रक :

आर.जी. एसोसिएट्स

बीकानेर

फोन : 0151-2527323